वेदोऽखिलोधर्ममूलम्

वेद प्रकाश

ऋग्वेद
यजुर्वेद
सामवेद
अथर्ववेद

मासिक पत्र (6-7 प्रतिमाह) मूल्यः ५ रुपये दिसम्बर २०१३

कुल पृष्ठ संख्या 20, वजनः 40 ग्राम

अन्तःपथ

महर्षि दयानन्द की जरूरत क्यों | ३ से ८
(आचार्य डॉ. अजय आर्य)
वैदिक मंत्रों में अलंकार विधान
(डॉ. भवानीलाल भारतीय) | ९ से १८

वेदों में ईश्वर से प्रार्थना और उसकी उपासना के साथ हर स्थान पर पुरुषार्थ का आदेश है, तभी आपकी प्रार्थना स्वीकार होती है। जो मनुष्य जिस बात के लिए प्रार्थना करता है, उसको वैसा ही पुरुषार्थ करना आवश्यक है अर्थात् जैसे आप सर्वोत्तम बुद्धि के लिए प्रार्थना करते हैं तो उसके लिए आपको सभी यथासंभव प्रयत्न करने आवश्यक हैं। यदि पुरुषार्थ के पश्चात् भी आपकी इच्छा पूर्ण नहीं होती है तो ईश्वर से अच्छे फल की प्रार्थना करते हुए उसके निर्णय को हृदय से अपना कर्म फल समझते हुये स्वीकार करें। –डॉ० विवेक आर्य

"आर्य" हिन्दू राजाओं का चारित्रिक आदर्श
[बुर्के से अधिक प्रभावशाली-शुद्ध आचार एवं विचार]

भारत देश की महान वैदिक सभ्यता में नारी को पूजनीय होने के साथ-साथ "माता" के पवित्र उद्‌बोधन से संबोधित किया गया है।

मुस्लिम काल में भी आर्य हिन्दू राजाओं द्वारा प्रत्येक नारी को उसी प्रकार से सम्मान दिया जाता था जैसे कोई भी व्यक्ति अपनी माँ का सम्मान करता है।

यह गौरव और मर्यादा उस कोटि की है, जो कि संसार के केवल सभ्य और विकसित जातियों में ही मिलती है।

जब महाराणा प्रताप का मुगलों से सघर्ष जारी था तो, उस समय स्वयं राणा के पुत्र अमरसिंह ने विरोधी अब्दुर्रहीम खानखाना के परिवार की औरतों को बंदी बनाकर राणा के समक्ष पेश किया तो राणा ने क्रोध में आकर अपने बेटे को हुक्म दिया कि तुरंत उन माताओं और बहनों को पूरे सम्मान के साथ अब्दुर्रहीम खानखाना के शिविर में छोड़ कर आये एवं भविष्य में ऐसी गलती दोबारा न करने की प्रतिज्ञा करे।

ध्यान रहे, महाराणा ने यह आदर्श उस काल में स्थापित किया था जब मुगल अबोध राजपूत राजकुमारियों से अपने हरम भर रहे थे। बड़े-बड़े राजपूत घरानों की बेटियाँ मुगलिया हरम के सात पर्दों के भीतर जीवन भर के लिए कैद कर दी जाती थीं। महाराणा चाहते तो उनके साथ भी ऐसा ही कर सकते थे पर नहीं, उनका स्वाभिमान ऐसी इज़ाज़त कभी नहीं देता था।

औरंगजेब के राज में हिन्दुओं पर अत्याचार अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था। हिन्दू या काफ़िर होना तो पाप ही हो गया था। धर्मान्ध औरंगजेब के अत्याचार से स्वयं उसके बाप और भाई तक न बच सके, साधारण हिन्दू जनता की स्वयं पाठक कल्पना कर सकते हैं। औरंगजेब की, अपने बेटे अकबर से अनबन हो गयी थी। इसी कारण उसका बेटा आगरा के किले को छोड़कर औरंगजेब के प्रखर विरोधी राजपूतों से जा मिला था जिनका नेतृत्व वीर दुर्गादास राठोड़ कर रहे थे।

कहाँ राजसी ठाठबाट में महलों की शीतल छाया में पला, बढ़ा अकबर, कहाँ राजस्थान की भस्म करने वाली तपती हुई धूल भरी गर्मी। शीघ्र सफलता न मिलती देख संघर्ष न करने का आदी अकबर राजपूतों का शिविर छोड़ कर भाग निकला। पीछे से अपने बच्चों अर्थात् औरंगजेब के पोतों-पोतियों को राजपूतों के शिविर में ही छोड़ गया। जब औरंगजेब को इस बात का पता चला तो उसे अपने पोते-पोतियों की चिन्ता हुई क्योंकि वह जैसा व्यवहार औरों के बच्चों के साथ करता था कहीं वैसा ही व्यवहार उसके बच्चों के साथ न हो जाये। परन्तु वीर दुर्गादास राठोड़ एवं औरंगजेब में भारी अंतर था। दुर्गादास की रगों में आर्य जाति का लहू बहता था। दुर्गादास ने प्राचीन आर्य मर्यादा का पालन करते हुए ससम्मान औरंगजेब के पोते-पोतियों को वापिस औरंगजेब के पास भेज दिया जिन्हें पाकर औरंगजेब अत्यंत प्रसन्न हुआ। वीर दुर्गादास राठोड़ ने इतिहास में अपना नाम अपने आर्य व्यवहार से स्वर्णिम शब्दों में लिखवा लिया।

वीर शिवाजी महाराज का सम्पूर्ण जीवन आर्य जाति की सेवा, रक्षा, मंदिरों के उद्धार, गोमाता के कल्याण एवं हिन्दू राष्ट्र की स्थापना के रूप में गुजरा जिन्हें पढ़कर प्राचीन आर्य राजाओं के महान आदर्शों का पुनः स्मरण हो जाता है। जीवन भर उनका संघर्ष कभी बीजापुर से, कभी मुगलों से चलता रहा। किसी भी युद्ध को जितने के बाद

शेष पृष्ठ १९ पर

वेदप्रकाश

संस्थापक : **स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द**

वर्ष ६३ अंक ५ वार्षिक मूल्य : तीस रुपये, एक प्रति ५ रुपये, दिसम्बर, २०१३

सम्पा० **अजयकुमार** पूर्व सम्पादक : स्व० **स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती**

ओ३म्

महर्षि दयानन्द की जरूरत क्यों?

–आचार्य डॉ. अजय आर्य

केन्द्रीय विद्यालय, धमतरी (09479122219)

महर्षि दयानन्द की जरूरत क्यों?

आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व गौतम बुद्ध (बचपन का नाम सिद्धार्थ) इस धरा पर हुए। उनका हृदय करुणा और मानव मात्र के प्रति प्रेम से भरा हुआ था। वे भ्रमण करने निकले। समाज की अच्छाई और बुराई पर विचार करते थे। वे जिधर जाते उन्हें हिंसा का अराजक वातावरण दिखाई देता था। हिंसा का तांडव हो रहा था। लाखों-हजारों पशुओं की बलि चढ़ाई जा रही थी। धर्म के नाम पर हजारों मूक पशुओं की निर्मम हत्या की जा रही थी। इन हत्याओं को धर्म के ताने-बाने में बुना जा रहा था। मंदिरों तथा उपासना के पवित्र स्थल रक्त रंजित हो रहे थे। इसके विरोध में कोई आवाज नहीं उठाता था। सब चुप बैठे थे। सिद्धार्थ साहसी थे। तार्किकता और मानवीय संवेदना से भरा चित्त उन्हें चैन से सोने नहीं देता था। अजीब सी बेचैनी उन्हें परेशान करती थी। उनसे रहा न गया। उन्होंने सवाल करने का निर्णय लिया। उन्होंने समाज से पूछा। समाज के तथाकथित कर्णधारों से पूछा। धर्मध्वजी ब्राह्मणों से पूछा। इस कुत्सित हिंसा और बलि के लिए जिम्मेदार कौन है? सबने एक ही स्वर में जवाब दिया-वेद में लिखा है। यह वेदोक्त कर्म है।

उस युवक में जोश था, जुनून था। वह करुणा और मैत्री के भाव से भरे हुए थे। वह अनुचित को उचित मानने को तैयार नहीं थे। चाहे वह किसी भी धर्मग्रन्थ में क्यों न लिखा गया हो। उन्होंने कहा, "जो वेद हिंसा को उचित मानता है, मैं उस वेद को नहीं मानता।" वह वेद के खिलाफ हो गये। वेदपोषित धर्म के खिलाफ हो गये।

लगभग ढाई हजार वर्षों बाद इस घटना की फिर पुनरावृत्ति होती है।

गुजरात के टंकारा ग्राम में तीव्र मेधा संपन्न प्रेम दया व करुणा से परिपूर्ण हृदय वाले मूलशंकर का जन्म हुआ। सिद्धार्थ के जीवन में जीवन की चार अवस्थाओं के ज्ञान का जिक्र होता है। मूलशंकर ने भी चाचा और बहन की मृत्यु के रूप में जीवन के उसी सत्य का साक्षात्कार किया। वे मृत्यु को जानकर उससे परे जाने की बात सोचते थे। यही घटना उनके वैराग्य का सोपान बनी। उन्होंने सिद्धों, संतों, तपस्वियों का संग किया। कई-कई दिनों तक निराहार रहे। हिमालय की कंदराओं में तपस्या की। बर्फीली नदियों को पार किया। समाधि में लीन रहे। गुरुवर विरजानन्द की शरण में शास्त्रों का गहन अध्ययन किया। ज्ञान और तप के सर्वोच्च शिखर को छुआ।

वे भी अपने करुणापूर्ण चित्त से प्रेरित होकर गुरुदेव की आज्ञा लेकर देश का भ्रमण करने निकल पड़े।

तथाकथित ब्राह्मणों का समाज में वर्चस्व था। सती प्रथा के नाम पर स्त्रियों को जिन्दा जलाया जा रहा था। स्त्रियों को पढ़ने का अधिकार न था। बाल विवाह, नारी-अशिक्षा, विधवाओं पर अत्याचार, अंधविश्वास, पाखण्ड, जातिप्रथा जैसी न जाने कितनी कुरीतियों ने समाज को जकड़ रखा था। बलिप्रथा के नाम पर रक्त तब भी बह रहा था। इस दृश्य ने मूलशंकर (दयानन्द) को हिलाकर रख दिया। मानवीय संवेदना से भरा उनका चित्त बेचैन हो उठा-

वे रात को उठकर रोते थे जब सारा आलम सोता था।

वही सवाल, जो ढाई हजार वर्ष पूर्व सिद्धार्थ ने उठाया फिर उठा। इस कुत्सित हिंसा और बलि के लिए जिम्मेदार कौन है? मानव मानव के बीच ऊँच-नीच की रेखा किसने खींची। नारी को पढ़ने का अधिकार क्यों नहीं है। सबने एक ही स्वर में फिर वही जवाब दिया। वेद में लिखा है। यह वेदोक्त कर्म है।

सवाल भी लगभग वही था। जवाब भी वही था। अंतर था तो मूलशंकर और सिद्धार्थ की प्रतिक्रिया में। सिद्धार्थ ने बिना क्षण गँवाये कह दिया— "मैं ऐसे वेद को नहीं मानता, जो समाज को हिंसा की प्रेरणा देता है।" मूलशंकर (महर्षि) ने कहा—"मुझे दिखाओ तो सही वेद में लिखा कहाँ है? मैं वेद का स्वाध्याय करूँगा। वेद पढ़ूँगा, उसका आलोडन करूँगा, मंथन करूँगा, विवेचन करूँगा।" महर्षि वेद के खिलाफ नहीं हुए। उन्होंने वेदों को पढ़ा और पाया कि **वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।**

उन्होंने वेद को इतनी गहराई से पढ़ा कि वे 'वेदोंवाले' स्वामी ही बन

गए। वैदिक ज्ञान को विज्ञान से जोड़ने वाले आधुनिक युग में वे प्रथम व्यक्ति थे। अगर दयानन्द नहीं होते तो शायद हम सबके घर मैं एक सिद्धार्थ होता, जो वेद और तत्पोषित धर्म को नकार रहा था। महर्षि ने न जाने कितने नास्तिकों को आस्तिक बनाया। तर्क संपन्न, आंग्लशिक्षा से प्रभावित मुंशीराम और गुरुदत्त जैसे न जाने कितने युवाओं के मलीन मन को महर्षि के जीवन ने वैदिक आस्था के गंगाजल से परम पावन और प्रेरक बना दिया था।

महर्षि दयानन्द की सामयिकता

आज गली–गली में शराब की दुकानें हैं। शिक्षा की सजी हुई तथाकथित दुकानों में चरित्र को ताक पर रखा जा रहा है। माता–पिता वृद्धाश्रम (Old age Home) की शोभा बन रहे हैं। युवा पीढ़ी अपने सांस्कृतिक मूल्यों से दूर हो गई है। नित नए–नए गुरुओं का डंका बज रहा है। देश की जनता को बरगलाकर कृपा का कारोबार किया जा रहा है। आज अगर हम अपनी पीढ़ी को भौतिकता की चकाचौंध में खोते हुए नहीं देखना चाहते तो वे (महर्षि दयानन्द) सामयिक हैं। आज हम नहीं चाहते कि हमारी पीढ़ी नैतिक मूल्यों से दूर हो तो वे सामयिक हैं।

देश के सामने बड़ी–बड़ी चुनौतियाँ हैं। अज्ञान, अन्याय और अभाव को दूर करने में हम असमर्थ हो रहे हैं। अज्ञान से लड़ने वाले ब्राह्मणों का समाज में अभाव है। अन्याय से निजात दिला सकने वाली क्षात्र शक्ति कहीं अदृश्य हो गई है। समाज का अभाव दूर कर सकने वाले वैश्य कहीं दिखाई नहीं देते। वर्णव्यवस्था के बिना इसका समाधान कैसे होगा। अज्ञान के अभाव में अंधविश्वास तथा पाखंड का प्रचार हो रहा है। वर्णव्यवस्था के सामाजिक मनोविज्ञान को दयानन्द के बिना समझा नहीं जा सकता। फलित ज्योतिष और कृपा का कारोबार करने वालों की कतार दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही है। मंदिरों के नाम पर करोड़ों का वारा न्यारा किया जा रहा है। जिन मंदिरों को समाज सुधार का केन्द्र बनाना था, वे अपनी ही रोटी सेंकने में मस्त हो गए है। धर्मस्थलों को व्यभिचार तथा व्यसन का केंद्र बनाने में कोई ज्यादा देर नहीं है। भारतीय धर्म तथा अध्यात्म को नीचा दिखाने की नित नई–नई कोशिशें की जा रही हैं। महर्षि दयानन्द के तर्क तीक्ष्ण शरों के बिना इस महायुद्ध में विजयी नहीं बना जा सकता। वेदादिशास्त्रों तथा तत्पोषित धर्म की रक्षा के लिए महर्षि के विचारों की सामयिकता हमेशा बनी रहेगी।

जब-जब वेदों की सामयिकता तथा उसकी वैज्ञानिक पृष्ठभूमि की चर्चा होगी तो 'ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका' की याद जरूर आयेगी। जब धर्म की आड़ में पल्लवित इन विविध सम्प्रदायों, पन्थों के विश्लेषण की गह्वरा में कोई उतरने का साहस करेगा तो 'सत्यार्थप्रकाश' का प्रकाश उसका मार्ग प्रशस्त करेगा। जब कभी मानव निर्माण की विधि को खोजने का प्रयास किया जायेगा। तो 'संस्कारविधि' मानव निर्माण के विज्ञान को परिभाषित करती हुई परिलक्षित होगी। मानव व्यवहार के विज्ञान की समझ को जब आगे बढ़ाने की कोशिश की जायेगी तो महर्षि दयानान्द प्रणीत 'व्यवहारभानु' मानव मनोविज्ञान के आकाश में अपनी किरणें प्रसारित करता नजर आएगा। जब-जब समाज-सुधारकों की गणना की जायेगी समाज-सुधारक महर्षि दयानन्द उस आकाश में चमकते हुये 'ध्रुव' तारे की भाँति दिखाई देंगे। महर्षि ने वैदिक ध्वजा लेकर पुरातन ज्ञान के जल से नवीन जगत् के क्षेत्र को सींचा है। नारी को अबला से सबला बनाकर उन्होंने गार्गी, दुर्गा, मदालसा और दुर्गा तक बनने का अधिकार दिया। नारी जाति के सच्चे उद्धारक वही हैं। जाति-पाँति का भेद भुलाकर उन्होंने कहा कि हम सब ईश्वर पुत्र हैं-

शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः।

वेदादिशास्त्रों के माध्यम से स्वदेश प्रेम का अलख जागने वाले वे पहले व्यक्ति थे। उनका मानना था कि 'जो स्वदेशी राज्य होता है, वो सर्वोपरि होता है।'

पहले धर्मगुरु हैं। सामाजिक परिवर्तन की दिशा में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान उन्हीं का है। महर्षि के विचार आज भी आधुनिक हैं। महर्षि दयानन्द आज भी सामयिक हैं। उनके विचार हमारी तर्कशक्ति को जीवित करते हैं। महर्षि दयानन्द की आँखें हमारा मार्ग प्रशस्त करती हैं।

आर्यसमाज का प्रचार कार्य

आर्यसमाज का प्रचार कार्य तो चल रहा है। परंतु उसमें पहले जैसा जोश कम दिखाई दे रहा है। हम बड़े-बड़े सम्मेलनों में उलझे हुए हैं। सम्मेलनों में भीड़ के नाम पर आस-पास के आर्यजन जुट जाते हैं। महर्षि दयानन्द जी की जय बोल कर घर लौट आते हैं। मुझे लगता है कि यह वेद अथवा आर्यसमाज के प्रचार का कार्य नहीं है। किसी भी सम्मेलन को तभी सफल मानना चाहिए जब उपस्थित जन-समुदाय का कम से कम दस

प्रतिशत भाग गैर आर्यसमाजी हो। अगर हम अपने से इतर लोगों को नहीं जोड़ पा रहे हैं तो हमें आर्यसमाज के प्रचार के उपायों पर गहन विचार-विमर्श करना चाहिए। प्रचार के लिए छोटी-छोटी धनराशि भी बहुत काम करती है। ऐसी राशियों से छोटे-छोटे कार्यों से वेदप्रचार के कार्य की आधारशिला रखी जा सकती है।

आर्यसमाज को सामयिक अवसरों पर महर्षि के विचारों पर प्रकाश डालते हुए कार्य करना चाहिए। समाचार-पत्रों और फ्लेक्स के माध्यम से इसे जन-जन तक पहुँचाने की कोशिश की जानी चाहिए। दीपावली आदि बड़े पर्वों पर फ्लेक्स के बैनर तैयार करके आर्यसमाज मंदिर के मार्गों में लगाया जाना चाहिए। आर्यसमाज मंदिर के बाहर वैदिक विद्वानों की सूची उनके संपर्क दूरभाषा संख्या के साथ लगाई जा सके तो अच्छा है। श्राद्ध, नवरात्र, दीपावली, तीर्थस्नान तथा भारतीय पर्वों पर महर्षि दयानन्द के हदयस्पर्शी वाक्यों का प्रचार किया जाना चाहिए। वैदिक सत्संगों के स्तर को ऊपर उठाने की कोशिश की जानी चाहिए। हम छोटे-छोटे विज्ञापनों में स्वामीजी के विचारों के आधार पर छोटे-छोटे लेख (ट्रेक्ट) तैयार करके जनता तक पहुँचा सकते हैं। इन प्रयासों में बहुत ही कम खर्च आता है और प्रचार का मार्ग प्रशस्त होता है। वैदिक संस्कारों, यज्ञ, योग आदि के माध्यम से अच्छा प्रचार होता है। आर्यसमाजियों के बीच आर्यसमाज का प्रचार मुझे तो बेमानी लगता है।

आर्यसमाज को अपने जनोपयोगी सर्वहितकारी सिद्धांतों तथा कार्यों को आगे ले जाने का कार्य करने की जरूरत है। आर्यसमाज को अपने सत्संगों में आस-पास के विशिष्ट लोगों को भी विशेष अवसरों पर आमंत्रित करके यजमान बनने की प्रेरणा देनी चाहिए। आर्यसमाज अपने विद्वानों तथा धर्माचार्यों के कर्मकाण्ड से अनेक श्रद्धालु लोग जुड़े होते हैं, उन्हें आर्यसमाज का साहित्य भेंट किया जा सकता है। आर्यसमाज की गतिविधियों से सम्बन्धित विज्ञापन उन तक पहुँचाये जा सकते हैं। आर्यसमाज के लिए दान भी एकत्रित किया जा सकता है। जब हम दिल्ली में थे तो हमने देखा था कि आर्यसमाज के धर्माचार्य कर्मकाण्ड कराते समय अपने साथ आर्यसमाज की दान-रसीद अपने साथ रखते थे। कर्मकाण्ड और अपनी दक्षिण के पश्चात् वे आर्यसमाज की रसीद निकालते थे। इससे आर्यसमाज के प्रचार के लिए पर्याप्त धन एकत्रित हो जाता था। धन-संग्रह की यह परंपरा मुझे बहुत ही सार्थक लगी। आर्यसमाज अपने ऐसे श्रद्धालुओं, जो सिर्फ कर्मकाण्ड के लिए आर्यसमाज में आते हैं, को भी आर्यसमाज से जोड़

सकता है। ऐसे सज्जनों को 'स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश' जैसी छोटी-छोटी पुस्तकें भेंट की जा सकती हैं। आर्यसमाज सेक्टर-6 भिलाई विभिन्न अवसरों पर निःशुल्क पुस्तक वितरण का कार्य करता है। वह इसके लिए धन्यवाद तथा साधुवाद का पात्र है। इस कार्य को योजनाबद्ध ढंग से प्रभावी बनाया जाये तो ज्यादा उपयोगी होगा। आर्यसमाज बैजनाथपारा विवाहित जोड़ों को सत्यार्थप्रकाश वितरित करता है। सत्यार्थप्रकाश को समझने तथा पढ़ने के लिए बुद्धि तथा मनोभावों का विशिष्ट स्तर अपेक्षित होता है। जो प्रथम बार आर्यसमाज के संपर्क में आनेवाले व्यक्ति में नहीं होता है। महर्षि दयानन्द के सिद्धांतों से ओत-प्रोत गृहस्थ जीवन पर लिखी हुई पुस्तकें भेंट की जा सकती हैं। अगर आर्यसमाज की किसी पत्रिका का वार्षिक सदस्य उन्हें बनाया जाये तो यह आर्य पत्रिकाओं के लिए जीवनदायी भी हो सकता है।

आर्य वैदिक सत्संग

आर्य वैदिक सत्संग को भी वेदप्रचार का केंद्र बनाया जा सकता है। पाखंड और अन्धविश्वास का प्रसार करने तथा गुरुडम फैलाने वाले सत्संगों की भीड़ बढ़ती जा रही है। प्रत्येक आर्यसमाज को महीने में एक विशिष्ट वैदिक सत्संग का आयोजन करना चाहिए। इसकी योजना प्रथम सप्ताह में ही तैयार कर ली जानी चाहिए। आस-पास के विशिष्ट आर्यवक्ता को उद्‌बोधन हेतु आमंत्रित किया जाना चाहिए। संभव हो तो माह में आने वाले विशिष्ट त्योहारों, पर्वों (पद) ऐसे आयोजन किये जाएँ। इन आयोजनों में सदस्यों को सपरिवार आने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। आजकल आर्यसमाज में आर्यसमाजी तो हैं किन्तु, आर्यपरिवारों की संख्या धीरे-धीरे कम होती जा रही है। आर्यसमाज अपने धर्माचार्यों को आपस में अदल-बदलकर भी उद्‌बोधन के लिए आमंत्रित कर सकते हैं। दीपावली-मिलन, होली-मिलन, आर्यपरिवार मिलन-समारोह जैसे आयोजनों से परिवारों की भागीदारी बढ़ती है।

शहर की आर्यसमाजें आपस में मिलकर शहर स्तर के आयोजन कर सकती हैं। कोशिश यह की जानी चाहिए की आयोजन का उद्देश्य अपने सिद्धांतों का प्रचार तथा अपने संगठन को मजबूत करना ही होना चाहिए आजकल आर्यसमाज में भी मालापरस्ती बढ़ रही है। यह हमारे प्रचार को कमजोर करती है।

वैदिक मंत्रों में अलंकार विधान

–डॉ. भवानीलाल भारतीय

आचार्यों ने काव्य की आत्मा रस को माना है। वेद भी काव्य है। यद्यपि वह मनुष्य रचित न होकर ईश्वर प्रदत्त माना जाता है। अथर्ववेद के अनुसार–**"पश्य देवस्य काव्यम् न ममार न जीर्यति।"** देव के इस दिव्य काव्य को देखो जो न तो कभी मरता है और न जीर्ण होता है, न पुराना होता है। प्रत्येक वेदमंत्र पर उसके द्रष्टा ऋषि का नाम अंकित रहता है। यद्यपि ये ऋषि मंत्रों के रचयिता न होकर मंन्त्रों में निहित तत्त्व के द्रष्टा माने जाते हैं–**ऋषयो मंत्र द्रष्टारः।** (निरुक्तः)। काव्य में रस तो प्रधान है ही, उसमें अलंकारों, उक्ति वैचित्र्य तथा अन्य आवश्यक गुणों की विद्यमानता भी प्रशस्त मानी जाती है। अलंकारों को काव्य का शोभावर्द्धक धर्म माना जाता है। जैसे वस्त्राभूषणों से सुसज्जित अलंकृता नारी की प्रशंसा कहीं अधिक होती है, उसी प्रकार काव्य में अलंकारों का प्रयोग काव्य सौन्दर्य का वर्द्धक ही माना जाता है। यों तो अलंकारों की संख्या शताधिक है किन्तु इन सबके मूल में दो पदार्थों की समानता ही अलंकार योजना का कारण बनती है। यत्र-तत्र शब्दों के द्विअर्थक प्रयोग तथा अन्य प्रकार के चमत्कार पूर्ण प्रयोग भी अलंकार योजना में सहायक होते हैं।

ऋषि दयानन्द ने स्वरचित वेदभाष्य में मंत्रों में आये अलंकारों का यत्र-तत्र निर्देश किया है। वाचक लुप्तोपमा आदि अलंकारों के संकेत उन्होंने अपने भाष्य में दिये हैं।

यहाँ कुछ ऐसे ही अलंकार प्रधान मंत्रों के विवेचन में निम्न पंक्तियाँ लिखी जा रही हैं। ऋग्वेद के सातवें मण्डल का ८९वाँ सूक्त वरुण देवता को समर्पित है। इसकी कुल मंत्र संख्या पाँच है। वरणीय, कामना करने के योग्य, ब्रह्माण्ड के सर्वोपरि शासक वरुण नाम वाले परमेश्वर से भक्त की प्रार्थना इन मंत्रों में आई है। यहाँ उपमा अलंकार योजना युक्त दो मंत्र विशेष रूप से मननीय हैं–

मिट्टी के घर जैसा नश्वर मानव शरीर

मो षु वरुण मृन्मयं गृहं राजन्नहं गमम्।
मृळा सुक्षत्र मृळय।। (७।८९।।१)

हे कृपालु, न्यायकारी वरुण राजन्–मैं अपने शुभाशुभ कर्मों के भोग के लिए इस मिट्टी के बने गृह तुल्य नश्वर शरीर में आ गया हूँ। कृपा करो

कि मैं जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो जाऊँ और आगे कभी ऐसी नश्वर काया में मेरी आत्मा का प्रवेश न हो। हे ऐश्वर्य और बल सम्पन्न सुक्षत्र वरुण, ऐसी कृपा करो। ध्यान रहे कि वेदों में जहाँ परमात्मा को इन्द्र, अग्नि, पूषन्, आदित्य आदि विभिन्न नामों से पुकारा गया है वहाँ वरुण भी उसी परमात्मा का नाम है। ऋग्वेद का मंत्र 'इन्द्र मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो.' (ऋ.) इस तथ्य का साक्षी है कि न्यायशील होने के कारण वेदों में परमात्मा को 'वरुण राजा' कहा गया है। नश्वर शरीर मिट्टी के घर से उपमित किया गया है। दोनों ही नाशवान् हैं। मिट्टी से बना घर तथा मानव का पांच भौतिक शरीर।

इसी सूक्त के चतुर्थ मंत्र में परमात्मा के साथ सदा रहने वाले तथापि अज्ञानी मनुष्य की स्थिति उस व्यक्ति के तुल्य बताई गई है जो जल में रह कर भी प्यासा रह जाता है। **"जल बिच मीन पियासी, मोहि देख के आवे हांसी"** कबीर की यह उक्ति इसी तथ्य की ओर संकेत करती है–

अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम्।

मृळा सुक्षत्र मृळय।। (७।८९।४)

कैसा विचित्र प्रसंग है कि जल के मध्य में स्थित जीव भी सांसारिक तृष्णा से मुक्त नहीं है। जिस प्रकार सर्वव्यापक परमात्मा के सतत सान्निध्य में जीव रहता है, तथापि वह परमात्मा के उस आनन्द से अछूता ही रहता है–पानी में सदा रहने वाली उस मछली के तुल्य जो चौबीस घण्टे पानी में रहती है तथापि प्यासी है। ईश्वरानुभव से वंचित अभागा जीव उस परमात्मा के सच्चिदानन्द रूप का अनुभव नहीं करता। कवि ने ठीक कहा है– **आनन्द स्रोत बह रहा फिर भी उदास है।**

पानी में रह कर मछली को प्यास है।

मंत्र में इसी तथ्य का उद्घाटन किया गया है। सर्वत्र व्यापक परमात्मा के निकट रहकर भी मनुष्य अपने अज्ञान के कारण उस आनन्दामृत से वंचित रह जाता है जैसे जल में रहकर भी कोई अभागा व्यक्ति प्यासा रहे और सांसारिक वासनाएँ उसकी तृष्णा को अधिक बढ़ाती रहें। ऐसी स्थिति में दुखी मानव के लिए वरुण परमात्मा से कृपा चाहने के अतिरिक्त और मार्ग ही क्या है?

पथरीली नदी तुल्य संसार से कैसे पार जायें?

संसार को सागर अथवा एक ऐसी नदी से उपमित किया जाता है जो अतीव दुस्तर है, वेगवती है तथा जिसमें पदे-पदे बाधाएँ पत्थरों की भाँति

रास्ता रोक लेती हैं। इस प्रस्तराकीर्ण पथरीली नदी से कैसे पार जायें इसका उपाय ऋग्वेद (१०।५३।८) के निम्न मंत्र में देखें:-

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः।
अत्रा जहेम ये असन्नशेवाः शिवान्वयमुत्तरेमभि वाजान्॥

मंत्र में परमात्मा का अपने से कनिष्ठ मित्र जीवात्मा के प्रति सम्बोधन (सखाय) है। हे मित्रो, यह पत्थरों से भी संसार रूपी नदी सदा से बह रही है। इसके पार जाने के लिए मिलकर उद्योग करो। सम्मिलित पुरुषार्थ ही तुम्हें विजय दिलायेगा। उठो (उत्तिष्ठत) और इस बाधक नदी को पार करो। इसके लिए प्रथम करणीय कार्य तो यह है कि जो अकल्याणकारी पाप एवं दु:खदायी कर्म हैं, उन्हें यहीं पर त्याग दो और जो कल्याणकारी, ऐश्वर्य युक्त लक्ष्य हैं उन्हें प्राप्त करो। इस प्रकार अशिव त्याग (अकल्याणकारी कर्मों के त्याग) तथा शिव (कल्याणकारी कर्म) कर्मों के द्वारा ही इस दुस्तर, कंटकाकीर्ण भव रूपी नदी को पार कर कल्याणकारी परमात्मा के समीप जा सकोगे। बिना पाप तथा अनिष्ट कर्मों को त्यागे मोक्ष का मार्ग दुर्लभ ही रहता है।

तीक्ष्ण दन्त चूहे की भाँति तृषणाएँ हमें खा रही हैं

चूहे के दाँत अत्यन्त तीखे होते हैं। वे प्रत्येक वस्तु को इस तेज दाँतों से काट कर छिन्न-भिन्न कर देते हैं। सांसारिक तृष्णाएँ, वासनाएँ, कामनाएँ हमें चूहे की भाँति खा रही हैं। इस दयनीय स्थिति में दुखी जीव की शक्तिशाली परमात्मा से निम्न प्रार्थना है:-

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र परमात्मन्! परमात्मा को 'मघवन्' उत्तम ऐश्वर्यशाली कहा गया है—जिस प्रकार हिंसक चूहा रस से युक्त सूत को खा जाता है इसी प्रकार ये मानसिक चिन्ताएँ और वासनाएँ मुझे निरन्तर खा रही हैं। इनसे मुक्ति तेरी कृपा से ही सम्भव है। तू हमें अविलम्ब सुखी कर, इन हिंसक तृष्णा रूपी चूहों से बचा। हम पर कृपा कर, तू तो हमारे कृपालु पिता के समान है। जिस प्रकार पिता सदा अपनी सन्तान का हित चिन्तन करता है और उसे आधि-व्याधि, बाधाओं से बचाता है, उसी प्रकार पिता तुल्य परमात्मा इन्द्र हमारी कल्याण कामना ही नहीं करता है, हमें दु:खों और बाधाओं से बचाता है। मंत्र इस प्रकार है-

मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो।
सकृत्सु नो मघवन्निद्र मृळयाधा पितेव नो भव।। (१०।३३।३)

सांसारिक तृष्णाओं के पीड़ादायक देश को सभी संसारी जन-जन

पदे-पदे अनुभव कर रहे हैं। इससे त्राण पाने के लिए कृपालु परमात्मा से यह प्रार्थना है।

परमात्मा रूपी दैवी नौका में बैठकर भवसागर पार करो

यदि संसार सागर है तो इसके पार जाने के लिए नौका भी उपस्थित है। आवश्यकता है उस प्रभु रूपी दैवी, गुण सम्पन्न नौका में बैठकर कठिन मँझधार वाले सागर के पार जाने की प्रबल इच्छा, तदनुसार प्रार्थना-उपासना आदि साधन ऋग्वेद के दसवें मण्डल के सूक्त ६३ का दसवाँ मंत्र इसी दैवी नाव का वर्णन करता है–

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसम् सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये॥

परमात्मा की भक्ति रूपी यह दिव्य नौका भली प्रकार भक्त की रक्षा करने वाली–'सुत्रामाणं' है। यह पृथिवी के तुल्य प्रशस्त है। इसमें अवकाश की कोई कमी नहीं है। यह द्युलोक की भाँति ज्ञान रूपी प्रकाश से युक्त है, पाप रहित है, उत्तम सुखों से युक्त-सुशर्माणम् है अदिति-अखण्डनीया है। तथा सुन्दर रचना युक्त है यथा परमात्मा रचित सृष्टि जिस प्रकार नौका संचालन चप्पुओं से होता है, उसी प्रकार यह दैवी नौका योग साधना रूपी सुन्दर चप्पुओं से सुसज्जित है। यह अनागस पापों से सर्वथा दूर रहने वाली है। यह ऐसे छिद्रों से युक्त नहीं है जिनके कारण नौका में पानी भर जाये और वह गहन तल में समा जाये। यह बिना छिद्रों वाली सर्वथा दोष रहित है। आओ, हम सब इस प्रभु भक्ति रूपी नौका पर आरुहेम सवार होकर दुस्तर भवसागर से पार हो जावें। दैवी नौका परमात्मा तथा उसकी भक्ति ही है। नौका का साङ्ग रूपक मंत्र में व्यक्त हुआ है। इसी नौका पर सवार होकर भव नदी को पार करें।

हम कल्याण मार्ग के पथिक बनें सूर्य और चन्द्र का दृष्टान्त

दृष्टान्त की गणना भी अलंकारों में होती है। किन्हीं दो वस्तुओं के साम्य को देखकर उनमें से एक को अन्य के समान प्रस्तुत करना दृष्टान्त देना है। हमारा जीव कैसा है? किस मार्ग पर चलें, इसका उत्तर वेद में दिया गया है–हे मानव, तू स्वस्ति अर्थात् कल्याण के मार्ग पर चल। उस मार्ग को अपना जो तेरे इहलोक और परलोक का सुधार करे। यही कल्याण का मार्ग है। इसे ही वेद ने स्वस्ति पन्था कहा है–

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि॥ (ऋ.५।५१।१५)

मनुष्य को उसी प्रकार कल्याण के मार्ग पर चलना चाहिए जैसे सूर्य

तथा चन्द्रमा आकाश मार्ग में अनुशासन एवं मर्यादा का पालन करते हुए चलते हैं। यह तभी सम्भव है जब हम ऐसे लोगों का संग करें जो ज्ञानवान हों, हिंसा से दूर रहने वाले हों तथा ज्ञानी हों। स्वस्ति पथ के पथिक का जीवन अनुशासन बद्ध हो, साथ ही वह ऐसे मनुष्यों की संगति करे जो ज्ञानी हों, अहिंसक हो तथा ज्ञान सम्पन्न हों। ऐसे सद्‌गुण सम्पन्न लोगों की संगति से ही मनुष्य की जीवन यात्रा सफल होगी और वह सतत कल्याण के रास्ते पर चलता रहेगा।

वेद का विचित्र बैल

ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल के ५८वें सूक्त का तीसरा मंत्र यज्ञ का एक विचित्र रूपक से वर्णन करता है। मंत्र में एक ऐसे विचित्र बैल का उल्लेख है जिसके चार सींग, तीन पैर, दो सिर तथा सात हाथ हैं। यह तीन प्रकार से (त्रिधा) बँधा हुआ है। यह महान् देव है तथा मरणधर्मा मनुष्यों के बीच प्रवेश करता है। निश्चय ही यह मंत्र वर्णित बैल आलंकारिक शैली से प्रस्तुत किया गया है। याज्ञिक भाष्यकारों तथा निरुक्त शास्त्र के रचयिता यास्क ने इस मंत्र की व्याख्या अपने-अपने ढंग से की है। प्रथम इसकी याज्ञिकों द्वारा की गई व्याख्या को देखें:-

चार वेद ही इस यज्ञ रूपी बैल के सींग हैं। सींगों से जिस प्रकार बैल अपनी रक्षा करता है, उसी प्रकार यज्ञ में चारों वेद याज्ञिक की रक्षा करते हैं। वेदों के विधान से ही यज्ञ सम्पन्न किया जाता है। यज्ञों की क्रिया तीन सवनों में सम्पन्न होती है। ये हैं-प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन तथा सायं सवन। यों कह सकते हैं कि प्रातः तथा सायं के यज्ञ (अग्निहोत्र) के अतिरिक्त मध्याह्न के समय याज्ञिक विद्वानों का पारस्परिक वार्तालाप, ज्ञानचर्चा आदि ही माध्यन्दिन सवन (ज्ञान यज्ञ) है। यज्ञ का फल है-अभ्युदय तथा निश्रेयस (लौकिक एवं पारलौकिक उन्नति) की प्राप्ति, यही यज्ञ रूपी बैल के दो सिर हैं। अथवा यजमान एवं यजमान पत्नी ही उसके सिर तुल्य हैं। सप्त हस्तास-सात हाथों का अभिप्राय सात छन्दों से अथवा सप्तलोकों (भू, भुवः, स्वः, महः जनः, तपः और सत्य) से लिया जा सकता है। कारण कि यज्ञ केवल पृथ्वी तक ही सीमित क्रिया नहीं है। यज्ञ का व्यापक अर्थ लोकोपकार, परमार्थ चिन्तन तथा समत्व की स्थापना है और ये कार्य समस्त ब्रह्माण्डव्यापी हैं। सभी लोकों में इनका उपयोग होता है। यज्ञ रूपी बैल यदि तीन प्रकार से बाँधा गया है तो मानना चाहिए कि याज्ञिक को अपना कर्म मनसा, वाचा, कर्मणा तीन प्रकार से प्रतिबद्ध होकर करना चाहिए। अथवा यों कहें कि यज्ञ का सम्पादन वेदत्रयी के द्वारा

सम्पन्न किया जाता है। वह इस वेदत्रयी (ऋचाएँ, याजुष गद्य तथा गीति प्रधान साम) की मर्यादा से बँधा हुआ है। निश्चय ही सबका कल्याण करने वाला तथा मंगलकारी होने तथा देवपूजा, संगतिकरण एवं दान का भाव लिए यह यज्ञ महादेव है, जो मनुष्य मात्र में, मानव समाज में विद्यमान है। यज्ञ कर्म तो मनुष्यों द्वारा ही किया जाता है। दान की प्रवृत्ति तथा देव पूजा का भाव एवं संगतिकरण की क्रिया भी मनुष्यों में ही होती है न कि पशुओं में, अतः मरणधर्मा (मर्त्य) मानवों में ही यज्ञ की स्थिति है। मंत्र का पाठ इस प्रकार है-

चत्वारि शृंगा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषयो रोरवीति महो देवो मर्त्यों आ विवेश॥

(ऋ.४।५८।३)

यज्ञ रूपी वृषभ का यह वर्णन पाठक में विस्मय के भाव भरता है तथापि इसे साङ्ग रूपक ही मानना चाहिए।

परमात्मा वह नीड़ (आश्रय स्थल) है जिसमें सब विश्राम करते हैं

हम प्रायः देखते हैं कि पक्षिगण प्रातः होते ही अपने घोंसलों को छोड़कर भोजन जुटाने के लिए विभिन्न दिशाओं की ओर प्रस्थान करते हैं तथा सायं समय पुनः लौट कर अपने घोंसले में विश्राम के लिए आ जाते हैं। परमात्मा तो सब चराचर जगत् का एक ही नीड़ है। विश्राम स्थल है जिसमें ब्रह्माण्डव्यापी चराचर जगत् प्रलयकाल में विश्राम लेता है और सृष्टि के प्रारम्भ में पुनः जागृत अवस्था में आकर अपने-अपने कार्य व्यापारों में लग जाता है। **'यत्र विश्वं भवत्येक नीडम्'** यह मंत्रांश यजुर्वेद (३२।८) का है। पूरा मंत्र इस प्रकार है—

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्।
तस्मिन्निदं सञ्च वि चैति सर्वं स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु॥

वस्तुतः परमात्मा के इस विभु स्वरूप को वेन अर्थात् मेधावी और ज्ञानवान पुरुष ही जानते हैं; अनुभव करते हैं। वे उस व्यापक परमात्मा को देखते हैं, उसका साक्षात्कार करते हैं और जानते हैं कि समस्त विश्व अन्ततः उसी एकमात्र नीड़ (आश्रय स्थल) में आकर स्थिरता और सन्तुष्टि प्राप्त करता है। जैसे पक्षिगण सायंकाल अपनी दैनन्दिन दिनचर्या (अन्नादि की प्राप्ति) को पूरा कर विश्राम के लिए अपने घोंसले में आ जाते हैं। वस्तुतः प्रलय काल में समस्त प्रजा उसी महाकाल के क्रोड़ में समा जाती है और सृष्टि प्रारम्भ काल में पुनः प्रकट होती है।

वह परमात्मा विभु है और समस्त प्रजाओं में ओतप्रोत है। ध्यान रहे कि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने स्वस्थापित शान्ति निकेतन (विश्वभारती विश्वविद्यालय) का आदर्शवाक्य इसी वेद के कथन को बनाया था जिसमें सारे संसार को परमात्मा रूपी नीड़ में विश्राम लेने वाला बताया गया है–

यत्र विश्वं भवत्येक नीडम्।

वस्तुतः मंत्र विश्व मानव की एकता का तथा परमात्मा को उसके एकमेव आश्रय स्थल होने का पाठ पढ़ाता है। हम नस्ल, भाषा, भूषा, भोजन आदि के मामलों में चाहे कितने ही पृथक् हों, अन्ततः हमें जाना तो उस परमात्मा की ही गोद में है जो निखिल ब्रह्माण्ड के निवासियों का अन्तिम विश्राम स्थल है। वह एक ही ऐसा घोंसला है जिसमें सारा विश्व अन्ततः विश्राम लेता है।

शरीररूपी रथ का संचालन करने वाला मन एक चतुर सारथी

यजुर्वेद के चौतीसवें अध्याय के प्रथम छः मंत्र मन को शिवसंकल्पों वाला बनाने का आदेश देते हैं। इस प्रकरण के अन्तिम मंत्र (३४.६) में मन को रथ संचालित करने वाले एक अच्छे सारथी से उपमित किया गया है। वस्तुतः शरीर को रथ बताने वाला यह रूपक मूल रूप में कठोपनिषद् की तृतीय वल्ली में आता है। यहाँ कहा गया है कि आत्मा शरीर रूपी रथ का स्वामी है और उसका वाहक रथ उसका शरीर है। यहाँ बुद्धि को सारथी बताया गया है और मन को लगाम कहा गया है। शरीर रूपी रथ को हाँकने वाले घोड़े हमारी इन्द्रियाँ हैं और विषय वे मार्ग हैं जिन पर यह रथ चलता है। इसके समानान्तर यदि यजुर्वेद के उक्त मंत्र को देखें तो यहाँ मन को ही सारथी माना है। मंत्र इस प्रकार है–

सुषारथिरश्वानि यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभी शुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।

जिस प्रकार एक योग्य और उत्तम सारथी लगाम सँभाले रथ के घोड़ों को ठीक मार्ग पर ले चलता है, वह इन्द्रियरूपी घोड़ों को नियम एवं अनुशासन में रखकर उनका सम्यक् संचालन करता है। वह प्यारा मन हृदय स्थल में स्थित है, अजिर अर्थात् जरादि व्याधियों से मुक्त और पूर्ण स्वस्थ है तथा वेगवान है। ऐसा वह मन शिव संकल्पों–कल्याणकारी विचारों से युक्त हो।

वस्तुतः हमारी शरीरस्थ कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों को ठीक मार्ग पर चलाने वाला हमारा मन ही है। मन ही मनुष्य के बंधन अथवा मोक्ष का कारण बनता है। सारे अच्छे–बुरे संकल्प पहले मन में ही उत्पन्न होते हैं।

तत्पश्चात् बुद्धि तथा विवेक की सहायता से यह मन न्याय-अन्याय, सत्यासत्य तथा धर्माधर्म का विवेक कर अपना मार्ग निर्दिष्ट करता है और तदनुकूल इन्द्रियों द्वारा उस कार्य को पूरा कराता है। अच्छा सारथी इन्द्रिय रूपी घोड़ों को पूर्ण नियंत्रण में रखता है जब कि उच्छृंखल मन हिताहित का विचार किये बिना ही इन्द्रियों को बेलगाम घोड़े की भाँति यथेच्छाचार करने का आदेश देकर शरीर रूपी रथ को सत् मार्ग से च्युत कर देता है। परिणामत: ये बिगड़े घोड़े (असत् कर्म में प्रवृत्त इन्द्रियाँ) शरीर को पतन के किसी गहन गह्वर में ढकेल देते हैं। यही कारण है कि इन शिव संकल्प मंत्रों में परमात्मा से कामना की गई है कि वह हमारे इस मन को अच्छे संकल्पों वाला बनायें। मंत्र गत मूल भाव को लेकर कठोपनिषद्कार ऋषि ने इस शरीर रूपी रथ के रूपक को आगे बढ़ाया और आत्मा को रथ का स्वामी, शरीर को रथ, बुद्धि को सारथी तथा मन को वल्गा (लगाम) के तुल्य बताया। यह रथ तीव्र गति से हमारे विषयों रूपी मार्ग पर दौड़ रहा है। आवश्यकता इसे नियंत्रित करने और अनुशासन में रखने की है जिसे एक अच्छा सारथी ही कर सकता है।

ब्राह्मण की गाय को मत मारो

अथर्ववेद के बारहवें काण्ड का पञ्चम सूक्त ब्रह्मगवी का वर्णन करता है। यह ब्रह्मगवी ही इस सूक्त की देवता (वर्ण्य-विषय) है। वेदों में गौ शब्द अनेकार्थवाची है। इसके कई अर्थ होते हैं। पृथ्वी, वाणी तथा सूर्य की किरणें गौ नाम से वर्णित हैं। ब्रह्मगवी सूक्त का मूल भाव तो इतना ही है कि हमें ब्राह्मण (विद्वान्, बुद्धिमान) की गौ अर्थात् वाणी का प्रतिरोध नहीं करना चाहिए। कारण यह है कि ब्राह्मण की वाणी स्वार्थ से पृथक्, सर्वलोकोपकारी तथा समाज के हित के लिए होती है। यदि ऐसे समाज को प्रगति की दिशा की ओर ले जाने वाले विद्वान् ब्राह्मण की वाणी का निरादर किया जाता है, उसकी अवहेलना की जाती है तिरस्कार किया जाता है। अवमानना की जाती है तो ऐसा करना समाज के लिए और उस व्यक्ति के लिए भी घातक होता है जो ब्राह्मण की इस लोकोपकारी वाणी का हनन करता है। ऐसा करना ही ब्राह्मण की गाय की हत्या करना है।

अथवा ब्राह्मण को दी हुई भूमि से उसका अधिकार छीना जाता है, उसे जोर जबरदस्ती से अधिगृहीत किया जाता है तो ऐसा अन्याय भी उस अत्याचारी राजा के सर्वनाश का कारण बनता है। कारण स्पष्ट है—**श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्तर्ते श्रिता**। (अथर्व. १२।५।७)यह ब्राह्मण द्वारा

उच्चरित वाणी अथवा उसके अधिकार की धरती (ब्रह्मगवी) श्रम और तप के द्वारा अर्जित है। यह कोई अनर्गल तथा व्यर्थ का वाणी विलास नहीं है। अतीत काल में वसिष्ठ, विश्वामित्र, वाल्मीकि, व्यास, चाणक्य आदि ब्रह्मर्षियों ने जिस कल्याणी वाणी का उच्चारण किया था। उसे उन्होंने बड़े परिश्रम, तप तथा संयम के द्वारा उपार्जित किया था। यदि कोई क्षत्रिय अपनी भौतिक शक्ति के बल पर, दुस्साहस कर उस ब्राह्मीवाणी को छीन लेता है। उसे अपनी विचाराभिव्यक्ति से वंचित करता हैं तो सच मानिए, वह तथाकथित अत्याचारी क्षत्रिय स्वयं ही सत्यवाणी, बल, पुण्य तथा लक्ष्मी से वंचित हो जाता है। ये समस्त गुण उससे पलायन कर जाते हैं। कारण कि उसने सर्व जन हितकारी, ब्राह्मण की गौ का अपमान किया है। उसका तिरस्कार किया है। प्रासंगिक मंत्र निम्न है–

तामाददानस्य ब्रह्मगवीं जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य।
अप क्रामति सुनृता वीर्यं पुण्यां लक्ष्मीः॥ (१२/५/५६)

अगले मंत्र में ओज, तेज, सहनशीलता, बल, वाणी की शक्ति, इन्द्रियों की श्री, ब्रह्मतेज, क्षात्रबल आदि सब पदार्थ उस व्यक्ति से दूर चले जाते हैं जो इस ब्रह्मगवी (ब्राह्मण की वाणी तथा धरती) का हठात् हरण कर लेते हैं–**तानि सर्वाण्यपक्रामन्ति ब्रह्मगवीमाददानस्य जिनते ब्राह्मणां क्षत्रियस्य॥** (१२।५।११)। यह सूक्त पर्याप्त बड़ा है। आचार्य अभयदेव विद्यालंकार (पं. देवशर्मा अभय) ने इसकी विस्तृत व्याख्या 'ब्राह्मण की गौ') नामक ग्रन्थ में की है। मंत्रगत ब्राह्मण को वर्तमान जन्मगत ब्राह्मण जाति से नहीं समझना चाहिए। परम्परानुसार तो मध्यकालीन राजा भी इस बात का ध्यान रखते थे कि जन्माधारित ब्राह्मणों के भूमि आदि के स्वत्कों को राजकर्मचारी न छीनें तथापि वेद 'ब्राह्मण' से लोकोपकार में प्रवृत्त, समाज के सच्चे मार्गदर्शक का अभिप्राय लेता है।

कालरूपी अश्व तीव्र गति से दौड़ रहा है

अथर्ववेद उन्नीसवें काण्ड (१९।५३।१) का निम्न मंत्र 'काल' का वर्णन करता है। मंत्र का देवता 'काल' है। इसे परमात्मा तथा काल (समय) दोनों अर्थों में व्याख्यात किया जा सकता है। वस्तुतः काल तो परमात्मा ही है जो यथा समय सारी सृष्टि का संहार करता है। यहाँ इस काल को अश्व के रूप में प्रस्तुत किया गया है। जिस प्रकार तीव्र वेग वाला घोड़ा अपने निर्धारित मार्ग पर तीव्र गति से दौड़ता है, उसी प्रकार काल परमात्मा भी निरन्तर सृष्टिचक्र को घुमाता है। इसे सप्तरश्मि सात प्रकार की किरणों

वाला कहा है। काल का 'परमात्मा' अर्थ करने वाले भाष्यकारों ने सप्तरश्मियों से महत्तत्त्व, अहंकार तथा पंच तन्मात्राओं का अर्थ लिया है। सांख्यशास्त्र वर्णित ये तत्त्व परमात्मा के मार्गदर्शन में ही अपने कार्य करते हैं। यदि 'काल' को समय सूचक माना जाये तो कहा जायगा कि सात किरणों वाला सूर्य ही यह अश्व है जो निरन्तर तीव्र गति से दौड़ रहा है। कालान्तर में जब सूर्य का उल्लेख पौराणिक देवता के रूप में होने लगा तो उसके ऐसे रथ की कल्पना की गई जिसमें सात घोड़े जुते हैं। उड़ीसा के कोर्णाक नायक सूर्य मंदिर में जो रथारूढ़ सूर्य को दिखाया गया है उसके रथ के घोड़ों की संख्या सात है।

यह कालरूपी परमात्मा 'सहस्राक्ष' है। अर्थात् सबको देखने वाला है। ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसे उसकी सर्वज्ञता की परिधि से बाहर समझा जाये। जिस प्रकार यजुर्वेदोक्त पुरुष सूक्त में परमात्मा को सहस्राक्ष कहा गया है और उसका ऋषि दयानन्द ने अनेक नेत्रों वाला–सबको देखने वाला कहा है, वही अर्थ यहाँ भी लेना उचित है। यह काल अजर-अमर है। कभी जीर्ण होने वाला नहीं है। इसी प्रकार काल का प्रवाह अनादि और अनन्त है जो अविरल गति से, निरन्तर प्रवाहित हो रहा है। यह अत्यन्त बलशाली है। परमात्मा तथा काल के बल की तो कोई सीमा ही नहीं है। इस काल रूपी दुर्धर्ष अश्व पर सवार होने वाले, काल के प्रवाह को उलट देने वाले लोग तो बिरले ही होते हैं। 'कवि' अर्थात् क्रान्तदर्शी तथा 'विपश्चित' अर्थात् बुद्धिमान् इस काल रूपी अश्व का आरोहण करते हैं। वस्तुतः सारे भुवन, लोक-लोकान्तर इसी महाकाल के वशवर्ती होकर रथ में लगे चक्रों की भाँति निरन्तर गति कर रहे हैं। जिस प्रकार रथ के पहिए में लगे अरे रथ के चलने के साथ-साथ घूमते हैं उसी प्रकार ये लोक-लोकान्तर भी परमात्मा के अनुशासन में रहते हुए अपने-अपने स्थान या दिशा में अविरल भ्रमण करते हैं। मंत्र का पाठ इस प्रकार है–

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा॥

(अथर्व.१९।५३।१)

यहाँ अलंकार युक्त, सारगर्भित वेदमंत्रों के कुछ उदाहरण ही पेश किये गये हैं। अन्योक्ति अलंकार का सहारा लेकर ऋषि दयानन्द ने ऊषा देवता के मंत्रों को नारी में घटाया है।

३/५ शंकर कालोनी, श्री गंगानगर

पृष्ठ 2 का शेष–

शिवाजी के सरदार ने कल्याण के मुस्लिम सूबेदार की बीबी शिवाजी के सम्मुख पेश की। उसको देखते ही शिवाजी महाराज अत्यंत क्रोधित हो गए और उस सरदार को तत्काल यह हुक्म दिया की उस महिला को ससम्मान वापिस अपने घर छोड़ आये। अत्यंत विनम्र भाव से शिवाजी उस महिला से बोले, "माता! आप कितनी सुन्दर हैं, मैं भी आपका पुत्र होता तो इतना ही सुन्दर होता। अपने सैनिक द्वारा की गई गलती के लिए मैं आपसे माफी माँगता हूँ। यह कहकर शिवाजी ने तत्काल आदेश दिया कि जो भी सैनिक या सरदार जो किसी भी ऊँचे पद पर होगा अगर शत्रु की स्त्री को हाथ लगायेगा तो उसका अंग छेदन कर दिया जायेगा। कहाँ औरंगजेब की सेना के सिपाही जिनके हाथ अगर कोई हिन्दू लड़की लग जाती तो उसे अपने हरम में गुलाम बना कर रख लेते थे अथवा उसे खुले आम गुलाम बाजार में बेच देते थे और कहाँ वीर शिवाजी का यह पवित्र आर्य आदर्श। इतिहास में शिवाजी की यह नैतिकता स्वर्णिम अक्षरों में लिखी गई है।

इन ऐतिहासिक प्रसंगों को पढ़कर पाठक स्वयं यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं की महानता और आर्य मर्यादा व्यक्ति के विचार और व्यवहार से होती है। धर्म की असली परिभाषा उच्च कोटि का पवित्र और श्रेष्ठ आचरण हैं। धर्म के नाम पर अत्याचार करना तो केवल अज्ञानता और मूर्खता है।

पुनः प्रकाशित पुस्तकें

वैदिक सिद्धान्तों पर

सहेलियों की वार्ता लेखक पं. सुरेशचन्द्र वेदालंकार रु. 25.00

वैदिक सिद्धान्त अपने आपमें सत्य, सनातन और शाश्वत हैं। इन्हीं वैदिक सिद्धान्तों और आर्यसमाज के दृष्टिकोण को सर्वसाधारण को समझाने के लिए लेखक ने इन्हें प्रश्नोत्तर शैली में अत्यन्त रोचक व सरल भाषा में प्रस्तुत किया है।

इस पुस्तक का यही उद्देश्य है कि यदि वैदिक सिद्धान्त हमारे मस्तिष्क में बैठ जाएँ तो हम वैदिक और अवैदिक सिद्धान्तों के अन्तर को समझने में समर्थ होंगे। और इनके प्रचार-प्रसार द्वारा ही हमारे सभी कष्ट दूर हो सकते हैं।

आइए, महर्षि दयानन्द द्वारा प्रदर्शित ज्ञानलोक की इन किरणों से अज्ञान के अन्धकार को दूर भगाएँ।

प्राप्ति स्थान :
विजयकुमार गोविन्दराम हासानंद
4408, नई सड़क दिल्ली-6
दूरभाषः 01123977216, 65630255

दिसम्बर २०१३ Registered with Regn. of News Paper for India
वेदप्रकाश R.No. 627/57 Regd. No. DL(DG)-11/8030/2012-14, U(DGO) 01/2013-14 15.07.2013

नया प्रकाशन

मेरे अनुभवः मेरा चिन्तन प्रो. रामविचार रु. 100.00

यह ग्रन्थ न केवल प्रो. रामविचारजी की जीवन यात्रा तथा कार्यों को दर्शाता है, बल्कि यह एक युग की कथा है। त्याग, समर्पण, कर्मठता, लग्न, निष्ठा, स्वाभिमान आदि नैतिक मूल्यों का पाठ है। इसे पढ़कर आप जानेंगे कि 53 वर्षों की इस यात्रा को 'वेद सन्देश' के यशस्वी लेखक प्रो. रामविचारजी ने कैसे प्राध्यापक, आर्यसमाज के कार्यकर्त्ता, धन संग्रहकर्त्ता, वक्ता तथा लेखक के रूप में पूरी की। यह मनोरंजक कथा लेखक के जीवन की कुछ मीठी-कड़वी यादें हैं, जिन्हें पढ़कर पाठक अवश्य लाभान्वित होंगे।

पुनः प्रकाशित पुस्तकें

Quest: The Vedic Answers by Madan Raheja Rs. 125.00

Mr. Madan Raheja's book provide answers to over 150 questions which often beleaguer even the most intelligent mind. An intelligent reading of the book removes many cobwebs in understanding the intricate problems of life and death, pleasures and pains, birth and re-birth, bondage and emancipation etc. and corrects many mistaken notions about God, Soul and Matter.

वैदिक नित्यकर्म विधि रु. 60.00

प्रस्तुत पुस्तक में प्रतिदिन प्रातःकाल उठने से लेकर रात्रि शयन करने तक का विधान निहित है। समय-समय पर विशेष पर्व आदि पर करणीय कर्म भी इसमें हैं। व्यक्तिगत कर्मों के साथ कुछ सामाजिक कार्यों के भी इसमें दिशा-निर्देश हैं।

महर्षि दयानन्दः पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति रु. 80.00

पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति की विद्वत्तापूर्ण लेखनी से प्रस्तुत है महर्षि दयानन्द सरस्वती की जीवन गाथा। आइए, महर्षि के पावन जीवन की झाँकी देखें।

प्रकाशक-अजयकुमार, मुद्रक-अजयकुमार, स्वामी-अजयकुमार, गोविन्दराम हासानन्द, 4408, नई सड़क, दिल्ली-6, अजयकुमार द्वारा सम्पादित, प्रिंटर्स-अजय प्रिंटर्स, 1586/C-13, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32 में प्रिंट करा, वेदप्रकाश कार्यालय, 4408, नई सड़क, दिल्ली-6 से प्रसारित किया। न्यायक्षेत्र-दिल्ली।